बनास जन

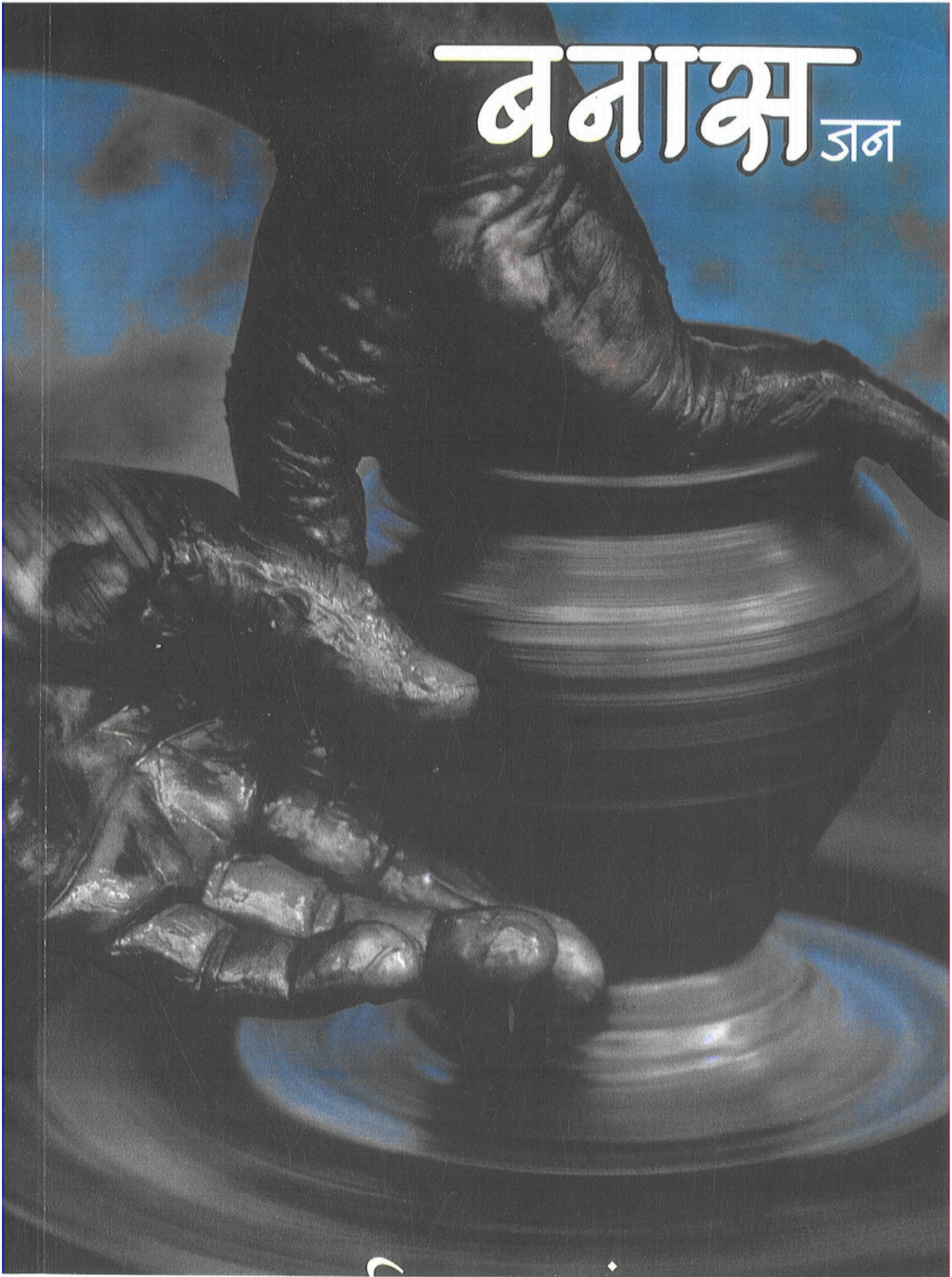

कविता प्रसंग

रेखा सेठी

स्त्री-कविता का 'पॉलिटिकल' और कात्यायनी की कविताएँ

स्त्री-कविता का 'पॉलिटिकल'

विकसनशील समाज के लिए गतिशील समता का बोध आवश्यक है। समता की कोई भी अवधारणा स्थिर व स्थाई नहीं हो सकती। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, तकनीकी आदि अनेक कारणों से सामाजिक संरचनाएँ लगातार गतिशील परिवर्तनों की साक्षी रहती हैं। स्त्री-पुरुष की जीवन-स्थितियाँ भी इन परिवर्तनों के साथ चक्राकार-सी घूमती और बदलती रहती हैं। स्त्री-साहित्य, लगातार इन बदलती हुई परिस्थितियों व उनकी टकराहट में रूप धरती राजनीतिक प्रणालियों के प्रति उचित प्रतिक्रिया दर्ज करता रहा है, उनकी पहचान से स्त्री-कविता के मानचित्र पर बंधन और मुक्ति के सवालों को उसके निजी जीवन की सीमाओं के बाहर, देश और विश्व की राजनीति के सन्दर्भ में देखना समीचीन होगा।

रचनाशीलता को हमेशा 'पर्सनल' के 'पॉलिटिकल' होने से जोड़कर देखा गया है। पर्सनल में ही पॉलिटिकल होने जैसा इतना कुछ था कि स्त्री-कविता के पॉलिटिकल पर कम ध्यान गया। स्त्रीवाद में वैयक्तिक को राजनीतिक मान लेने की कठिनाई यह है कि समाज के लिए यह स्वीकारना कठिन हो जाता है कि स्त्रियों के भी राजनीतिक रूझान हैं। व्यक्ति का जेंडर उसकी साहित्यिक-सामाजिक चेतना को एक सीमा तक ही निर्दिष्ट कर सकता है। अपने परिवेश से जुड़ने का उसका ढंग और उससे पनपता दृष्टिबोध ही यह तय करता है कि उसके सामाजिक्र संबंधों की दिशा वैयक्तिक है या राजनीतिक। नागरिक अधिकारों के प्रति सजगता से लेकर लोकतान्त्रिक व्यवस्था में हस्तक्षेप तक, स्त्रियों ने सक्रिय भूमिका निभाई है लेकिन साहित्यिक-आलोचना में स्त्री रचनाशीलता की राजनीतिक चेतना पर अपेक्षतया कम बात हुई है। साहित्य व आलोचना दोनों ही स्त्री-कविता के राजनीतिक स्वर की प्रभाव क्षमता के उचित मूल्यांकन के प्रति उदासीन रहे हैं। यह स्थिति भी लैंगिक असमानताओं की पहचान का संकेतक सन्दर्भ बिंदु है।

समकालीन स्त्री-कविता में राजनीति की बात करते ही कात्यायनी और शुभा का नाम सबसे पहले ध्यान में आता है। दोनों की प्रतिबद्धता वाम राजनीति के प्रति है और दोनों ने व्यवस्था के दुश्चक्र में घिरे व्यक्ति की विवशता, आक्रोश और विद्रोह को सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है। कात्यायनी की कविता राजनीतिक परिवर्तन का अभियान है। कात्यायनी की कविता की पहचान इस गहरी सामाजिक संपृक्ति तथा प्रखर राजनितिक चेतना से ही बनती है। स्त्री-मुक्ति के सवालों को भी उन्होंने लोकतांत्रिक चेतना से सम्बद्ध किया, जिससे एक स्वाधीन व स्वायत्त स्त्री की परिकल्पना नागरिक अधिकारों की स्वायत्तता से निष्पन्न होती दिखाई पड़ती है। कात्यायनी की कविताओं पर आगे विस्तार से बात करेंगे। यहाँ समकालीन कविता के कुछ उदाहरणों द्वारा यह देखने की कोशिश कर सकते हैं कि स्त्री-कविता अपनी सहज गति में किस तरह राजनीतिक चेतना को अपने भीतर समाहित किए हुए विकसित हुई है। इन उदाहरणों के अतिरिक्त भी अनेक सशक्त राजनीतिक कविताएँ हैं और विविधमुखी राजनीतिक चेतना भी लेकिन यहाँ उद्देश्य केवल पृष्ठभूमि के रूप में इन कविताओं को देखने का है जिससे कात्यायनी की

रेखा सेठी : सुपरिचित आलोचक। अनेक पुस्तकें।
इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली-110007
फोन : 9810985759 ईमेल : reksethi22@gmail.com

कविता के राजनीतिक-सामाजिक विन्यास को समझने में मदद मिले।

सबसे पहले यदि शुभा की कविताओं पर बात करें तो उनकी रचनाएँ गहरे राजनीतिक बोध की कविताएँ हैं। उनमें विविध मुद्दों को लेकर क्रांतिधर्मा संकल्प चेतना विद्यमान है। पूँजीवादी समाज में शोषित जन समाज हो या बाजारवाद से बिखरते संबंध, साम्प्रदायिकता, हिंसा, बर्बरता के खिलाफ उनका स्वर तीखे आक्रोश व विद्रोह से भरा है। यह विद्रोह आम आदमी की पीड़ा और असहायता का साझीदार भी है--

हम महसूस करते रहते हैं
एक दूसरे की असहायता
हमारे समय में यही है
जनतंत्र का स्वरूप [1]

कविता का काम राजनीतिक चातुर्य का शब्द जाल फैलाना नहीं बल्कि राजनीति द्वारा खंडित मूल्य व्यवस्था के शिकार मनुष्य के प्रति संवेदना जगाना है। स्त्री-कविता यह काम बखूबी करती है। यह कविता मूलतः युद्ध और हिंसा के विरुद्ध है, फिर वह सन्दर्भ देश की राजनीति का हो या विश्व राजनीति का। इस दृष्टि से नीलेश रघुवंशी ने अपनी कविता में यह चिंता व्यक्त की है कि इक्कीसवीं सदी में धर्म की राजनीति व अमरीकी सर्वसत्तावाद के आधिपत्य से शक्ति-व्यवस्था का क्या रूप होगा, आने वाले समय में देश-दुनिया किस करवट बैठेंगे---

बदल रहा है समय धीरे-धीरे त्रासदी में
हमारे समय का महानायक कौन
जो इमारतें ढह गईं वो या
धर्मध्वजी जेहादी? जानें लीं जिन्होंने अनगिनत निर्दोषों की
क्या आज की रात
एक ध्रुवीय शक्ति-व्यवस्था के अंत की रात है
या यह रात है--
उसके और-और मजबूत होने की
अनगिनत काले साँपों से घिरी। [2]

बारीकी से देखें तो हमारे समय की सभी कवयित्रियों का अपना-अपना पॉलिटिकल स्टैंड है जो किसी न किसी रूप में लगातार उनकी कविताओं में आता रहा है। गगन गिल ने 1984 के दंगों से पहले पंजाब में चल रही अस्थिरता व आतंकवाद पर कई कविताएँ लिखी हैं। इन कविताओं में संत लोंगोवाल के प्रति वैचारिक आग्रह रखते हुए भी वे पंजाब में होने वाली हिंसा का विरोध करती हैं। ऐसी स्थितियों में खंडित होते मानवीय अहसास के प्रति उनकी सच्ची निष्ठा है। अनामिका ने दलाई लामा का जैसा सहानुभूतिपूर्ण संवेदनशील चित्रण किया है, वह अपने आप में उनकी राजनीति पर भी एक टिप्पणी है। सविता सिंह ने अपनी कविताओं के अतिरिक्त राजनीति-शास्त्र के विशेषज्ञ की हैसियत से राष्ट्रीय आन्दोलन में पितृसत्ता की उपस्थिति का बहुत बारीक विश्लेषण किया है। उनके अनुसार, 'हमें राष्ट्रवाद के अँधेरों को भी देखना चाहिए। औरतों के लिए उसकी अपनी मुसीबतें हैं।' एक संवाद में उन्होंने कहा, "...हमारा अपना जो राष्ट्रवाद है उसने हमारे लिए एक नए पितृसत्तात्मक समाज का निर्माण भी किया क्योंकि इस राष्ट्रीय व्यवस्था में स्त्री और पुरुष बराबर नहीं हैं। पितृसतात्मक व्यवस्था उसमें गुंथी हुई है... हालाँकि यहाँ भी राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्रियों की बहुत बड़ी भूमिका रही है लेकिन उसका प्रतिफल क्या हुआ? यह हमारे सामने है कि सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर तथा अन्य स्त्रियाँ जो

स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल थीं वे पुरुषवादी विवेक से प्रभावित रहीं। 1932-33 में जब स्त्री के प्रतिनिधित्व का सवाल उठा तो उनके द्वारा रखे गए विचार असमंजस में डालने वाले लगते हैं। वे राष्ट्रवादी होने के कारण ही अपनी योजना एवं लक्ष्य में पुरुषवादी लगते हैं। स्त्री-प्रतिनिधित्व के विषय में इन्होंने कहा कि स्त्रियों को कोई आरक्षण नहीं चाहिए बस उनकी मनुष्यता को पहचाना जाए। कितना बड़ा अंतर्विरोध है इस कथन में, क्योंकि एक तरफ यह कहा जा रहा है कि स्त्रियाँ बहुत सशक्त हैं उन्हें विशेष दर्जा नहीं चाहिए, साथ ही उनकी, मनुष्यता को नहीं पहचाना जा रहा इसका भी स्वीकार है। कहीं बहुत बड़ी फाँक है यहाँ।''[3] सविता सिंह का यह विश्लेषण कई सवाल खड़े करता है और स्त्री संघर्ष के इतिहास पर चिंता जताता है। आजादी की लड़ाई में अगुआ होकर आगे बढ़ी स्त्रियाँ आजादी के बाद फिर से नेपथ्य में चली गईं। एक बार फिर ये स्त्रियाँ पितृसत्ता की जकड़न और घरेलू हिंसा का शिकार होने लगीं। देश की स्वतंत्रता भी, स्त्रियों के संवैधानिक-नागरिक अधिकारों को सुनिश्चित करने में पूरी तरह सफल नहीं हुई।

दलित और आदिवासी समाज पर दृष्टि डालें तो उन्होंने जिस तरह का दोहरा हाशियाकरण झेला है, उसकी ध्वनि ग्रेस कुजूर से लेकर निर्मला पुतुल और जेसिंता केरकेट्टा तक की कविताओं में मिलती है। रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे, अनीता भारती की कविताएँ भी जातिगत राजनीति के विरोध की कविताएँ हैं। उनका कविता लिख पाना ही उनके राजनीतिक-बोध का प्रतीक है। सुशीला टाकभौरे ने दलित राजनीति के मुख्य सवाल गाँधी-अंबेडकर विवाद को अपनी कविता का विषय बनाया है--

कोई हाथी के पैरों से कुचलता है
कोई जंगल पहाड़ों में
मारता है भटकाकर
बापू आपने भंगी समुदाय की
बस्तियों में पहुँचकर
इस बलि के बकरों की
पीठ पर हाथ फेरा है
बापू आपने इन्हें खूब घेरा है
शांति और अहिंसा के साथ
इनके गले पर छुरा फेरा है![4]

इस अत्यंत संवेदनशील मसले पर सुशीला टाकभौरे की यह बेबाक टिप्पणी उनके राजनीतिक-बोध का पता देती है। इसी तरह निर्मला पुतुल, नवगठित झारखण्ड राज्य की घोषणा की खबर सुनकर भाई मंगल बेसरा को राजनीतिक नेताओं से सावधान करती हैं--

पुरखों के सपने रौंदते झक-झक सफेद कुरते वाले के पीछे
मत दौड़ो मेरे भाई। उन्हें पहचानो
वे तुम्हारे सपनों को भुनाने वाले लोग हैं
उनके एजेन्डे में दूर-दूर तक ही शामिल नहीं है
आन्दोलन को जन्म देने वाली आँखों के सपने[5]

ये सभी काव्य-पंक्तियाँ स्त्री-कविता के राजनीतिक आयाम के उदाहरण मात्र नहीं हैं, यह पक्ष इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि स्त्री की पहचान जब स्त्री से पहले एक नागरिक के रूप में होगी तब स्त्री-पुरुष की बहस अप्रासंगिक होकर स्वयं निरस्त हो जायेगी जो संभवतः जेंडर-न्यूट्रल समाज के निर्माण की पृष्ठभूमि बनेगी। 'जेंडर न्यूट्रल' होने का तर्क यही है कि जन-क्षेत्र में दाखिल होने के बाद लैंगिक

अस्मिता विलुप्त हो जानी चाहिए।

देश के राजनीतिक इतिहास में शाहीन बाग के साथ एक नया मोड़ आया है। शाहीन बाग प्रतिबद्धता एवं प्रतिरोध की संस्कृति का प्रतीक है। जैसे 16 दिसंबर की घटना के बाद स्त्रियों पर होने वाली हिंसा के विरोध में देश के सार्वजानिक स्थलों पर गुस्साई भीड़ ने कब्जा कर लिया था। उमड़े जन सैलाब में स्त्रियों की संख्या अधिक थी। आज एक बार फिर स्त्रियों ने मोर्चा संभाला है और यह मसला केवल स्त्री जीवन का मसला नहीं है, इसका संबंध राजनीतिक ताकत और जन साधारण के बीच बढ़ती अविश्वसनीयता से है। स्त्रियों ने साम्प्रदायिकता और हिंसा तथा शोषणकारी-दमन की शक्तियों का विरोध करते हुए अपनी राजनीतिक पक्षधरता व्यक्त की है। इस घटना ने अनेक कविताओं को जन्म दिया है। इंटरनेट के माध्यमों में ऐसी अनेक कविताएँ बिखरी हुईं हैं। कुछ कविताएँ अपने समय के दुःख और आक्रोश की तात्कालिक प्रतिक्रिया हैं लेकिन जो समय के अंतराल के पार बची रहेंगी वे इस ऐतिहासिक क्षण का सामाजिक पाठ बनेंगी।

कात्यायनी की कविताएँ : क्रांति और संवेदनाओं की स्त्री-मशाल

हिंदी की स्त्री-कविता की राजनीतिक चेतना का यह परिदृश्य आश्वस्त करता है। इन्हीं के बीच, कात्यायनी की कविता अपनी क्रांतिधर्मी चेतना के कारण राजनीतिक कविता का एक अलग प्रतिमान उपस्थित करती है। जीवन के तमाम निजी एवं सामाजिक प्रसंगों में उनकी पारखी निगाह विडंबनामूलक स्रोतों का अनावरण कर उन दुखती रगों को पकड़ पाती है जो व्यक्ति और समाज के जीवन को बदरंग कर रहे हैं। बहुमुखी शोषण तथा सांप्रदायिकता के आघातों से तार-तार होती मनुष्यता कोबचाने का संकल्प उनकी कविता का प्राण है। गहरी सामाजिक प्रतिबद्धता व मानवीय पक्षधरता का महीन तार उनकी समस्त रचनाओं को एक सूत्र में पिरोता है। संस्थाबद्ध, वर्चस्वशाली चुनौतियों के विकल्प के रूप में उन्हें कविता की सामाजिक भूमिका में गहरी आस्था है। परिवर्तन का सपना, उनकी कविताओं और आँखों में समान रूप से जीवंत होकर धड़कता है। निष्ठा तथा आशा का यह स्वर ऊसर होती दुनिया को किसी भी कीमत पर बचा लेने की उत्कट जिजीविषा से जुड़ी संकल्पधर्मिता का परिणाम है। सामाजिक चेतना का यह स्वर स्त्री कविता का विलक्षण स्वर है, जिसने स्त्री के स्त्रीत्व और दृष्टि दोनों को नई दिशा दी है।

कात्यायनी की कविताएँ अनेक स्तरों पर सामाजिक तिलिस्म को तोड़ती हैं। ये रचनाएँ सत्ता की दुरभिसंधियों के विरोध का काव्यात्मक अभियान हैं। सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में वे अपने समय और यथार्थ की जिस पहचान से रूबरू हुई हैं, उसके चक्रव्यूह को बेधकर नए मानवीय सामाजिक मूल्यों को अर्जित करने का संकल्प, उनके जीवन तथा उनकी कविता में एक साथ झलकता है। उनकी काव्य-यात्रा का प्रारंभ 1994 में 'सात भाइयों के बीच चंपा' से होता है। उससे पहले संभवतः 'चेहरों पर आँच' शीर्षक से उनकी एक कविता पुस्तिका का प्रकाशन हो चुका था लेकिन जिस काव्य-संकलन से उनकी पहचान बनी वह 'सात भाइयों के बीच चंपा' ही है। इसके बाद 1999 में 'इस पौरुषपूर्ण समय में' फिर 2002 में 'जादू नहीं कविता', 2004 में 'राख अँधेरे की बारिश में' और 2006 में 'फुटपाथ पर कुर्सी' उनके प्रसिद्ध काव्य संकलन हैं। 'दुर्ग द्वार पर दस्तक', 'षड्यंत्ररत्त समस्याओं के बीच' तथा 'कुछ जीवंत कुछ ज्वलंत' सामाजिक मुद्दों पर उनके विचारों को प्रस्तुत करने वाले सामयिक निबंधों के संकलन हैं। स्त्री जीवन की विषम स्थिति, सांप्रदायिक फासीवाद, बुद्धिजीवियों की अकर्मण्यता, थोथा आदर्शवाद व सुविधाजीविता इन रचनाओं के केंद्र में हैं। कात्यायनी ने अपने समाज और संस्कृति के सभी प्रश्नों पर गहराई से विचार किया है। इन स्थितियों के प्रतिरोध के रूप में वामपंथी वैचारिक आग्रह उनकी साहित्यिक कृतियों में विन्यस्त है। उनका रचना संसार इन्हीं सरोकारों को विचार के केंद्र में लाने तथा

बनाये रखने की ऊर्जस्वित रचनाशीलता का प्रमाण है।

देश की राजनीति से लेकर कविता की राजनीति तक कात्यायनी अपने वैचारिक आग्रहों के साथ एक पोजीशन लेती हैं। यह राजनीति और साहित्य दोनों के लिए ही निर्णायक क्षण है क्योंकि इसमें ढुलमुल समझौतों से भरी दुरभिसंधियों को नकारकर अपनी पक्षधरता तय की जाती है। उनका मानना है कि ''राजनीति की पैठ तो जीवन में सार्वत्रिक होती है। अराजनीतिक कविता की भी एक राजनीति होती है। जो लोगों को अराज़नीतिक बनाते हैं, वे लोगों को सामाजिक बदलाव में सक्रिय भूमिका निभाने से रोककर शासक वर्ग की राजनीति की सेवा करते हैं क्योंकि सामाजिक बदलाव की मुख्य रणभूमि राजनीतिक अधिरचना ही होती है।"[6] उन्होंने कविता की दुनिया में स्वयं को प्रमुखतया राजनीतिक कार्यकर्ता ही माना। इस यात्रा में जो अनुभव उन्होंने बटोरे उसी को कविता में कच्चे माल की तरह प्रयोग किया लेकिन इसे वे जिस गहराई और ईमानदारी के साथ करती हैं, वह उनकी काव्यात्मक संवेदना को एक अन्य धरातल पर अवस्थित करता है।

आज हम जिस कठिन समय से गुजर रहे हैं कात्यायनी उस समय को 'राख और अँधेरे की बारिश' का समय मानती हैं। सांप्रदायिक फासीवादी शक्तियों ने मिलकर ऐसा समय रचा है। सन् 2002 में गुजरात में हुई हिंसा इन ताकतों द्वारा मानवीय सद्भाव को ग्रस लेने की चरम स्थिति है। चारों ओर उत्पातियों का प्रकोप जिस तरह मानवता और मूल्यों की हत्या कर रहा था कात्यायनी अपनी पूरी ताकत से उसका विरोध करती हैं। उन्होंने इस हिंसा के विरोध में अनेक कविताएँ लिख-लिखकर लगभग साहित्यिक अभियान छेड़ दिया। वे मानती हैं ऐसा उन्होंने मात्र रजनीतिक दायित्व के निर्वाह की प्रेरणा से नहीं किया बल्कि 'सच्चे कवि मन की दुर्निवार नैतिक विकलता' से प्रेरित होकर किया। जनवरी 2004 में प्रकाशित काव्य संकलन 'राख और अँधेरे की बारिश में' प्रतिरोध की कविताओं से रचा गया है। इन कविताओं में ऐसी बहुत-सी रचनाएँ हैं जो उस समय हुई हिंसा के ब्यौरे देती हैं--

धुँआ और राख और जली-अधजली लाशों
और बलात्कृत स्त्रियों-बच्चियों और चीर दिए गर्भों
और टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए शिशु-शरीरों के बीच
कुचल दी गयी मानवता, चूर कर दिए गये विवेक और
दफन कर दी गयी सच्चाई के बीच
संस्कृति और विचार के ध्वंसावशेषों में
कुछ हेरते, भटकते
रुदन नहीं, सिसकी की तरह
उमड़ते रक्त से रुंधे गले से
बस निकल पड़ते हैं नाजिम हिकमत के ये शब्द
'आह, मेरे लोगो' [7]

गोधरा, 1992 में शुरू हुए धार्मिक उन्माद की परिणति है, कवयित्री ने उसका भी वर्णन किया है--

रथों पर सवार, रामनामी दुपट्टा ओढ़े, धर्मध्वजा उड़ाते आये वे
एक विचारहीन, पशुवत, सम्मोहित भीड़ लिये हुए अपने पीछे
अयोध्या का अर्थ और बोध बदलते हुए [8]

इन वर्णनों की आक्रामक भावात्मकता केवल वर्णन-विवरण में अपनी मुक्ति नहीं तलाशती बल्कि उस युग-यथार्थ से मुठभेड़ के लिए अपने कवि-साथियों का आह्वान करती है, अपनी भूमिका निर्धारित करती है और तटस्थता का ढोंग रचते साहित्यिकों को कटघरे में खड़ा करती है। उसकी दायित्व-मुक्ति

केवल प्रतीकात्मक विरोध के बहस-मुबाहिसों में संपन्न नहीं होती, उस निर्णायक युद्ध में वे अपने से सवाल करती हैं--

हम मानवता के शिल्पी, हम जन-संस्कृति के सर्जक-सेनानी,
क्या कर रहे हैं इस समय?
क्या हम कर रहे हैं आने वाले युद्ध की दृढ़निश्चयी तैयारी?[9]

इन कविताओं में 'रचना' अपने समय और समाज की नृशंस कार्यवाहियों में सक्रिय हस्तक्षेप की तरह शामिल है। जैसा कवयित्री ने स्वयं स्वीकार किया है, राजनीति उनके कवि-धर्म का स्वभाव है। वे अपनी पहचान इसी से जोड़ती हैं लेकिन यह भी ध्यान देने की बात है कि राजनीति यहाँ कविता की शर्तों पर शामिल है एक नारे के रूप में नहीं। कात्यायनी ने लिखा है, यदि नारे या लीफलेट की भाषा में लिखना हो तो वही लिखना चाहिए, कविता नहीं। ''कविता के साथ राजनीति की एक सुनिश्चित समझ और ज्यादा से ज्यादा सचेतन और मजबूत होनी चाहिए। पर राजनीति कविता की संरचना और बनावट-बुनावट में दिखती रहे तो कविता कुरूप हो जाती है। राजनीति वहाँ जीवन और प्रकृति की नैसर्गिकता की तरह होनी चाहिए। बेशक कहीं-कहीं उसे प्रत्यक्ष भी होना चाहिए। आखिरकार जीवन भी तो ऐसा ही होता है।''[10]

सीधी राजनीतिक गतिविधियों से जुड़ी हुई कुछेक कविताएँ भी हमें इस रचना संसार में मिल जाती हैं जैसे 'सदी के अंत में पूर्वजों का आह्वान' जो कम्युनिस्ट घोषणापत्र की 150 वर्षगाँठ पर विगत सर्वहारा क्रांतियों को याद करते हुए लिखी गयी। एक अन्य कविता है, 'गाओ! गाने की पुनर्जाग्रत अदम्य ललक और दुर्निवार आवश्यकता के साथ गाओ!' यह कविता देहाती मजदूर यूनियन की बिरहा टोली में शामिल कामरेडों की बेटियों को संबोधित करते हुए लिखी गयी--

गाओ मेरी नन्हीं साथियो,
फेफड़ों की पूरी ताकत से
सीनों पर पड़ी चट्टानों को धकेलते हुए गाओ ''

ऐसी सभी कविताओं में कात्यायनी ने अपनी गहन संवेदना के बल पर कविता को सतही होने से बचा लिया है।

सोवियत संघ के विघटन से विश्व राजनीति का एकतरफा ध्रुवीकरण आरंभ हुआ। अधिकांश प्रगतिवादी या जनवादी कहे जाने वाले कवियों की कविताओं का क्रांतिकारी स्वर मद्धिम पड़ गया लेकिन कात्यायनी ने अपनी काव्यचेतना में परिवर्तन के प्रति अपनी आस्था को खंडित नहीं होने दिया। कात्यायनी के लिए मनुष्य होने की परिभाषा संघर्ष की शर्त से होकर गुजरती है। लड़े बिना जीना, जीना ही नहीं है--यह वैचारिक पक्षधरता जिस रूप में शोषित-पीड़ित जन समाज की स्थितियों को बदलने के लिए उठ खड़ी होती है, वह जनवादी कविता का नया अध्याय रचती है। उनका दृढ़ निश्चय है कि कविता और राजनीति के बीच जो परस्पर संदेह का संबंध है, वह बदल सकता है। उस स्थिति को वे उच्च समाजवाद की स्थिति के रूप में देखती हैं जब श्रम विभाजन से पैदा हुआ 'एलिएनेशन' समाप्त हो जाएगा, तब राजनीति और कविता के बीच जो संतुलन स्थापित होगा, उससे 'कविता के दिन आयेंगे' भले ही इसमें शताब्दियाँ बीत जायें पर ऐसे दिन आयेंगे जरूर, कवि-मन में ऐसा विश्वास है।

कात्यायनी कविता के प्रति विश्वास लौटा लाने को प्रतिबद्ध हैं। इसलिए उनके यहाँ कविता या कला के उद्देश्य की बहस नया रूप धरती है। प्रेमचंद ने साहित्य की सोद्देश्यता की जो मशाल जलाई थी वह मुक्तिबोध के लिए कविता का नया आत्मसंघर्ष बनकर उपस्थित हुई और अब कात्यायनी के यहाँ उस पर फिर से बहस छिड़ी हुई है। कविता के चमत्कारी, जादुई स्वरूप का निषेध करते हुए, वे मानती हैं

कि कविता को मामूली जरुरत की चीज होना चाहिए जैसे कि 'आँसू पोंछने के लिए रुमाल या बागवानी के लिए खुरपी...। वे अपने कवि कर्म को बयान करते हुए कविता को 'आम फहम' बनाने की कोशिश करती हैं --(मंगलेश डबराल ने इसे ही कात्यायनी के सभी रचना-प्रयासों का मोटो कहा है)

स्मृति स्वप्न नहीं।
आशाएँ भरम नहीं।
कविता मिथ्या नहीं।
कविता जादू नहीं।
सिर्फ कवि हम नहीं। [12]

स्थितियों को बदलने की चाह में कात्यायनी एक-एक कर जिन गाँठों को खोलती हैं, उनमें कविता संबंधी चिंतन सबसे जरुरी है। डायरी के पन्नों पर दोहरा-दोहरा कर अलग-अलग शब्दों में लिखा गया है--''वे जो भाषा को बदलकर, शब्दों को मनमाने अर्थ देकर हमसे चीजों की पहचान छीनने की कोशिश कर रहे हैं, इतिहास उन्हें भीषण शाप देगा। लोक-स्मृतियाँ तो फिर भी रहेंगी। कविता तो फिर भी रहेगी और वे शापित लोग जब कभी सपनों की घाटी में जाना चाहेंगे, सरहदों पर उन्हें रोक दिया जायेगा। उनके पास पारपत्र नहीं होंगे। तब वे कविता की जरुरत महसूस करेंगे, पर अवश होंगे। वे भटकते रहेंगे और विस्मृति में, पागलपन में, कहीं भी उन्हें शरण नहीं मिलेगी।''[13] कविता और भाषा पर कात्यायनी की डायरी में दर्ज यह टिप्पणी असाधारण व स्थायी महत्व की है।

स्त्री-कविता में कात्यायनी की उपस्थिति इस अर्थ में विशिष्ट है कि उनकी तरह सक्रिय राजनीति पर संभवतः किसी अन्य स्त्री रचनाकार ने इतनी कविताएँ नहीं लिखीं। सुरेश सलिल ने अवश्य ही उन्हें सुभद्रा कुमारी चौहान की परंपरा से जोड़कर देखा है लेकिन आजादी के बाद के जिस क्रूर समय की साक्षी कात्यायनी की कविताएँ हैं उसमें वे न केवल कवि की हैसियत से अपनी भूमिका निभाती हैं बल्कि सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में भी सत्ता के तंत्र से लोहा लेती हैं। यह एक 'वजूद वाली स्त्री' का प्रतिकार है जो ऐसी शक्तियों के समझौतों और दुरभि-संधियों को बेनकाब करने का बीड़ा उठाये आगे बढ़ रही है जिनके कारण आम आदमी का जीवन कारुणिक त्रासदियों का एकालाप बन गया है। कात्यायनी की कविता, पूँजीवाद, फासीवाद व सांप्रदायिक ताकतों के संघटन पर आक्रामक प्रहार करती है और यह स्वर स्त्री-कविता में अत्यंत विरल है।

अपनी कविता के विषय में कात्यायनी ने एक और अत्यंत सार्थक टिप्पणी की है, ''जिस हद तक यह पौरुषपूर्ण समय है, उस हद तक मेरी कविता उसका प्रतिकार करने वाली हठी स्त्री की कविता है।''[14] स्त्री-कविता की अवधारणा पर विचार करते हुए कात्यायनी ने कहा था कि स्त्री-जीवन के विविध पक्षों, उसके अनुभव-अहसासों से जुड़ी उस कविता को ही स्त्री-कविता मानना चाहिए जो स्त्री रचनाकारों ने लिखी हैं यानी कात्यायनी के नजदीक 'स्त्री-दृष्टि' उनकी सामाजिक संपृक्ति भरी कविताओं में भी लक्षित की जा सकती है। मंगलेश डबराल ने लिखा भी है--''उनमें एक उत्पीड़ित मनुष्यता का संघर्ष है जिसे एक स्त्री के शिल्प में व्यक्त किया गया है...''[15] कात्यायनी मार्क्सवाद और स्त्रीवाद का जो मिला-जुला स्वर अपनी कविता में प्रतिष्ठित करती हैं उसमें मुक्ति की आकांक्षा बहुत से स्वरों के समवेत से बनती है। आने वाले समय में वे स्त्री के स्त्रीत्व को नई भूमिका ग्रहण करते देखती हैं।

इस नई स्त्री के साथ संभवतः समाज के 'जेंड़र-न्यूट्रल' ढाँचे का विकास हो सकेगा, यह संभावना बनती है लेकिन कात्यायनी इस नई स्त्री को परिभाषित करते हुए भी पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो पातीं उनके अनुसार समाजवाद की उन्नत अवस्था के अंतर्गत ही ऐसा हो सकता है अन्यथा परिवार और पितृसत्ता रूप बदल-बदलकर इस स्वतंत्रता को बाधित करते रहेंगे। सहस्राब्दियों से स्त्री का दुःख---सींझने-पकने

और सहने का इतिहास है। घर, स्त्रीत्व और मातृत्व--औरत की रोमानी छवि के पर्याय हैं। स्त्री स्वयं इन छवियों के मोह में इस कदर कैद है कि अपनी स्वतंत्र चेतना को चीन्ह कर अपनाना संभवतः उसकी कैफियत से परे रहा है। कात्यायनी की सामाजिक प्रतिबद्धता स्त्री के खिलाफ इन षड्यंत्रों को निरस्त कर स्त्री के नागरिक अधिकारों की पैरवी करती है। 'औरत और घर' कविता में वे बहुत खूबसूरती से घर और पागलखाने से बिंबों का संघटन करते हुए स्त्री जीवन के प्रश्न उपस्थित करती हैं।

औरत क्या एक घर के बिना भी हो सकती है
या फिर क्या कोई और भी चौहद्दी हो सकती है
सुखपूर्वक रहने-खाने-जीने के लिए
घर के अलावा
जिसमें रहते हुए औरत औरत बनी रहे और
घर घर भी बना रहे,
यानी वह न हो घर का हिस्सा,
बल्कि उसकी एक बाशिंदा हो?[16]

स्त्री के स्त्रीकरण की प्रक्रिया के भीषण दुःख का हाहाकार कात्यायनी की कविता में नहीं है, बस एक विडंबना है जो व्यक्ति के स्त्री होने को एक त्रासदी में बदल देती है। पूँजी के तमाम हस्तक्षेप जिन मानव विरोधी सामाजिक संरचनाओं को प्रोत्साहित करते हैं, कात्यायानी अपने जीवन और साहित्य में लगातार उनसे संघर्ष करती रही हैं।

इसके साथ-साथ, स्त्री जीवन की विडंबनाओं को बाजार आधारित व्यवस्था ने जिस तरह विकट किया है, 'रात के संतरी की कविता' उसकी साक्षी है। 'बार' में कपड़े उतारती और घर में कपड़े उतारती औरत का दुःख एक-सा ही है। ईंट के भट्टे में झोंक दी जाती और घर के चूल्हे में जुटी स्त्री की नियति भी एक-सी है। प्रजनन, गर्भपात, सौंदर्य प्रतियोगिताएँ और प्रेम का छद्म--इन सबसे गुजरती स्त्री के घर का कोई भी कोना उसके अपने लिए नहीं है। कवियों की दुनिया कल्पना की कौन सी स्त्री गढ़ना चाहती है जो स्त्री के इस प्रातिनिधिक जीवन की छाया से दूर है। गोबिन्द प्रसाद इस कविता के विषय में लिखते हैं,--''आदि से अंत तक पूरी कविता में संवेदना को मूर्त करने के लिए जितने भी बिम्ब हैं वे सभी स्त्री की भूमिकाओं से जुड़े हैं। महानगरीय बोध, राजनीति, कला तथा जीवन और सत्ता के विभिन्न रूपों को एक साथ जीवन के विभिन्न मोर्चों पर प्रकट किया गया है। स्त्री से जुड़े दैहिक, नैतिक, सेक्स, परिवार, राजनीति और श्रम के परस्पर विरोधी या कंट्रास्ट लगने वाले दृश्यों का संयोजन कुशलता से किया गया है। साथ ही, शिल्प संरचना की दृष्टि से देखें तो कविता में आये सभी दृश्य और घटनाएँ सहकालिक रूप में समानांतर एक क्रॉसरेफरेंस बनाते हैं। परिणामस्वरूप काव्य-संवेदना में अनुभव की सहभागिता स्त्री संवेदना को घनीभूत करने के साथ ही स्त्री संवेदना को नए आयाम देती है। अपने अंत तक आते-आते कविता एक विडंबना की ओर मुड़ जाती है।''[17] यह कविता अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, संभवतः जैसा गोबिन्द प्रसाद कहते हैं कि 'क्या कात्यायनी कहना चाहती हैं, स्त्री रात का संतरी है' और यदि ऐसा न भी हो तो रात का संतरी स्त्री जीवन के जिन अंतर्विरोधों का साक्षी बन उसे कविता में उतार देता है वह भी बहुत व्यंजक है। सविता सिंह की कविताओं में रात, नींद और सपने स्त्री जीवन का नया लोक दर्शाते हैं, जिसमें चिर शांति का ठहराव है। रात के नीम अँधेरे में स्त्री अपना भिन्न लोक निर्मित कर लेती है किंतु कात्यायनी के यहाँ यथार्थ की नग्न वास्तविकता स्त्री और रात के संबंध को निर्ममता से तराशती है।

इन कविताओं में दैहिक शोषण के बिंब हैं तो देह मुक्ति की तरकीबें भी। कभी वह स्त्री भाषा में

छिप जाती है तो कभी अपने एकांत में रचती-बसती है, कभी कविता करती है तो कभी देह होने से इंकार कर देती है। उसके ऐसा करते ही सब उल्ट-पुलट हो जाता है। कात्यायनी को स्त्री की इस भीतरी शक्ति पर बहुत भरोसा है तभी तो वे कहती हैं--

'इस स्त्री से डरो'
यह स्त्री
सब कुछ जानती है
पिंजरे के बारे में
जाल के बारे में
यंत्रणागृहों के बारे में
यंत्रणाघरों की बात छिड़ते ही
गाने लगती है
प्यार के बारे में
एक गीत
रहस्यमय है इस स्त्री की उलटबासियाँ
इन्हें समझो
इस स्त्री से डरो [18]

पिंजरे और जाल की असलियत समझने वाली यह स्त्री, मुक्ति के रोमांच को भी समझती है। मुक्ति की आकांक्षा और उस लक्ष्य को पा जाने की तदबीरें, संशयों के कुहासे को साफ कर मंजिलों की राह रोशन करती हैं। स्त्री जीवन के कंट्रास्ट का ग्राफ इन कविताओंमें बिना किसी लाग-लपेट के झलकता है। प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद अदम्य जिजीविषा के सहारे स्त्री अपना स्पेस पा लेती है।

कात्यायनी की वैचारिक प्रतिबद्धता जानती है कि "इस समाज में यदि कोई अंतिम सर्वहारा है तो नारी ही है'।[19] इसलिए उसका संघर्ष उन सबके संघर्ष से जुड़ा है "जिनके पास खोने को सिर्फ जंजीरें ही हैं।" उसकी हर प्रार्थना अपने जीवन के विषय में सोचने की प्रक्रिया है। गार्गी की सी अभिशप्त नियति को झेलते हुए भी वह प्रश्न करना नहीं छोड़ेगी।

सोचती है
वह कौन सी चीज है
जिसके बिना सब कुछ अधूरा है
प्यार भी, सौंदर्य भी, मातृत्व भी.....
सोचती है वह
और पूछती है चीख-चीखकर।
प्रतिध्वनि गूँजती है
घाटियों में मैदानों में
पहाड़ों से, समुँद्र की ऊँची लहरों से टकराकर
आजादी ! आजादी !! आजादी!!! [20]

आजादी-संघर्ष और मुक्ति का एकान्वित सपना कात्यायनी के काव्यानुभव की आतंरिक बुनावट में गुँथा हुआ है; कवयित्री ने अपने सभी काव्य संकलनों में अपनी पूरी शक्ति के साथ स्त्री की इस स्थायी आकांक्षा को अभिव्यक्ति दी है। जो इस मुक्ति सेआगे बढ़कर मानव-मुक्ति के स्वप्न में परिवर्तित हो जाता है। अधिकांश कवयित्रियों ने स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को मानव-मुक्ति से जोड़कर देखा है लेकिन कात्यायनी

की कविता में यह संदर्भ एक अतिरिक्त आयाम ग्रहण करता है। मार्क्सवादी प्रतिबद्धता इस मुक्ति-संघर्ष की दिशा निर्धारित करती है। कात्यायनी का विश्वास है कि स्त्री की लड़ाई केवल उसकी नहीं है, यह सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन की आकांक्षा है और ऐसे व्यापक परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि स्त्री और पुरुष साथ-साथ संघर्ष करें--''औरत को सामाजिक रूप से सक्रिय होना होगा और समाज के संघर्षों में पुरुषों के साथ मिलकर शिरकत किये बगैर औरत अपनी आजादीकी लड़ाई को प्रभावी ढ़ंग से नहीं लड़ सकती।"[21] कात्यायनी ने हमेशा यह माना है कि नारी मुक्ति के सभी अभियानों को एक व्यापक आन्दोलन का रूप लेना होगा। उत्तर आधुनिकतावाद के साथ जिस स्त्री विमर्श का उदय हुआ उसे वे 'नव-रूपवादीभाषा शास्त्रीय क्रीड़ा-कल्लोल' कहकर खारिज करती हैं और उसके माध्यम से किसी परिवर्तन की उन्हें कोई उम्मीद नहीं है।

इस वैचारिक आग्रह का ताप इतना अधिक है कि कभी-कभी यह भ्रम होने लगता है कि यह जीवन के कोमल संवेदनात्मक पहलुओं को खत्म तो नहीं कर देगा। कात्यायनी की कविता का सौन्दर्य-बोध स्त्री-जीवन की कोमलता और समर्पण का कायल नहीं है। उसकी सुंदरता बराबरी और आजादीमें है। वे अपने समय के लिए नया विकल्प प्रस्तावित करते हुए लिखती हैं, ''हम स्त्रियाँ एक पौरुषपूर्ण समय के अँधेरे में जी रही हैं और जी पा लेने की मानवीय शर्तों को पूरा करने में ही शेष हो रही हैं। ऐसे में चिंतन और कला के मार्गदर्शन के बहाने भी हम पर पुरुष आधिपत्य थोपा ही जाता है, कभी प्यार से तो कभी अधिकार से। मैं एक साहसी और बेहद मानवीय और साथ ही वैज्ञानिक दृष्टि-संपन्न पुरुष से ही कह सकती हूँ---यदि तुम एक आजाद औरत के सौंदर्य को जान सको तो जीवन भर उसके लिए तड़पते रहोगे और एक बेहतर इंसान बनते चले जाओगे और तुम्हारी और इस पूरे समाज की मुक्ति के रास्ते कुछ और सुगम हो जायेंगे।''[22] इसी आजाद स्त्री की छवि, कविता 'हॉकी खेलती लड़कियाँ' में उभरती है--

लड़कियाँ
पेनाल्टी कार्नर मार रही हैं
लड़कियाँ पास दे रही हैं
लड़कियाँ 'गोल-गोल' चिल्लाती हुई
बीच मैदान की ओर भाग रही हैं
लड़कियाँ एक दूसरे पर ढह रही हैं
एक दूसरे को चूम रही हैं [23]

'पेनाल्टी कॉर्नर मारती, खुलकर हँसती लड़कियाँ' हमारे समाज में सपने जैसी हैं। बाप-भाई की कड़ी निगरानी के बाहर, समाज की थोथी मान्यताओं को धत्ता बतातीं वे अपना स्पेस ढूँढ लेती हैं। कात्यायनी इस बिंब को अपनी कविता का अविस्मरणीय बिंब बनाकर प्रस्तुत करती हैं। वे मानती हैं कि हमारे देश में भी परिवार के पितृसत्तात्मक ढाँचे की रागात्मकता लगभग नष्ट हो चुकी है क्योंकि यह पारिवारिकता पूँजीवादी ढाँचे पर टिकी है जिसमें साधन और संपत्ति पर स्त्रियों का स्वामित्व लगभग नदारद है। ऐसे परिवार के प्रति उनका कोई मोह नहीं है।

यह आश्चर्य नहीं कि उनकी कविता में स्त्री अस्मिता के सवाल वर्ग चेतना से जुड़ जाते हैं। इस रूप में स्त्री की सामाजिक उपस्थिति एक अर्थ में स्त्री बौद्धिकता की प्रतिष्ठा का एक रूप है। कात्यायनी यह मानती रही हैं कि वर्ग-चेतना, 'हमारे सामाजिक स्वत्व का आधार है।' उसे प्राप्त करना, अपने स्त्रीत्व को पुनर्परिभाषित करने की प्रक्रिया है। वे कहती हैं, ''स्त्रियों की पूर्ण मुक्ति तो पूँजी के पाश से सामाजिक मुक्ति के बाद ही संभव है लेकिन मैं उस स्त्री को देख रही हूँ जो चूल्हे-चौके और पारिवारिक

दासता की बेड़ियों को झटककर मुक्तिकामी संघर्षरत लोगों की कतारों में अपनी जगह बना रही है, जो जड़ीभूत मान्यताओं, रूढ़ियों और संस्कारों से मुक्त होकर स्त्रीत्व को पुनर्परिभाषित कर रही है।"[24] 'इस स्त्री से डरो', 'त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम', 'एक असमाप्त कविता की अति प्राचीन पांडुलिपि', 'एक भूतपूर्व नगरवधू की दुर्गपति से प्रार्थना' आदि कविताओं में स्त्री की स्थिति को लेकर जो आक्रोश है, वह धीरे-धीरे परिपक्व गंभीरता में बदलने लगता है। अस्वीकार की उम्मीद में चुनौतियों को स्वीकार लेना, कात्यायनी की कविता का स्त्री-धर्म है। उनकी कविता का स्त्री पक्ष मजबूरियों का इतिहास न होकर चुप्पियाँ तोड़ने का संकल्प है--

ऐसा किया जाये कि
एक साजिश रची जाये

बारूदी सुरंगें बिछाकर
उड़ा दी जाये
चुप्पी की दुनिया। [25]

कात्यायनी की कविताएँ जिस गहरी सामाजिक प्रतिबद्धताओं से जन्म लेती हैं उसमें वाम विचारधारा का विशेष स्थान है लेकिन समाजवाद के विघटन के बाद कविता और विचारधारा का अंतःसंबंध हर क्षण नई कसौटियों की सान पर चढ़ाया जा रहा है। यह समय ऐतिहासिक विपर्यय का समय भी है जहाँ प्रगति और प्रतिक्रिया के बीच की विभाजक रेखाएँ धुँधली पड़ने लगी हैं और सामाजिक चिंताएँ, एक बड़े सांस्कृतिक उद्योग में परिवर्तित होने लगी हैं। ऐसे समय में अपने समय की संशयात्माएँ समाज पर एकाधिकार कर सबको दिग्भ्रम की जिन स्थितियों की ओर धकेल रही हैं, उसमें बड़े-बड़े क्रांतिकारी कवि भी स्वयं को अकेला पाकर स्वेच्छा से नेपथ्य का अंधकार चुन रहे हैं लेकिन कात्यायनी ने अपने भीतर की क्रांतिधर्मी चेतना से समझौता नहीं किया। समाजवाद के पतन का दर्द, आदर्शवादी सपनों को मिटा दिए जाने की पीड़ा में शामिल है, कविता का निर्णायक स्वर प्रतिरोध का ही है।

जब हम गाते हैं तो वे डर जाते हैं
वे डरते हैं हमारे गीतों से
और हमारी चुप्पी से भी [26]

"मैं अंतिम साँस तक हृदय और गले की पूरी ताकत से चीखकर कहना चाहूँगी कि मैं ईमानदारी से तभी तक रचना कर सकती हूँ जब तक ईमानदारी से रजनीतिक-सामाजिक मोर्चे पर लगी रहूँ। मेरे लिए वह सबसे बड़ा रचना-कर्म है।"[27]

क्रांति वही ला सकता है जो सपने देखता है और सपने वही देखता है जो प्रेम करता है। यह स्वप्नशीलता, परिवर्तन की आकांक्षा, सिर उठाये खड़े होने का हौसला यह सब कवयित्री की जीवन-दृष्टि में अनुस्यूत है। जीवन के प्रति सकारात्मक भाव से ऐसी आशा बँधती है। आज जिस विडंबना-पूर्ण समय में हम जी रहे हैं उसमें इस आस्था को बचाये रखना स्पृहणीय है। समकालीन कविता के परिश्य से ऐसे स्वर लगभग लुप्त हो गए हैं। इसके बाद भी और इसके बावजूदभी कात्यायनी अपनी कवितामें इसे जीवित रख सकी हैं, यह सत्य उनकी कविता को ऊसर समय की संभावना के रूप में प्रतिष्ठित करता है और स्त्री-कविता के 'पॉलिटिकल' या राजनीतिक को पूरी सत्ता और इयत्ता में स्थापित करता है।

संदर्भ

1. हमारे समय में जनतंत्र, शुभा, https://samkaleenjanmat-in/poems-by-shubha/
2. आज की रात, नीलेश रघुवंशी, पानी का स्वाद पृ. 60

3. सविता सिंह, हमें राष्ट्रवाद के अँधेरों को भी देखना चाहिए, नया ज्ञानोदय, जुलाई 2017, पृ. 72-73
4. बलि के बकरे, सुशीला टाकभौरे, हमारे हिस्से का सूरज, पृ.125
5. भाई मंगल बेसरा, निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ. 58-59
6. कात्यायनी, सामाजिक बदलाव की मुख्य रणभूमि राजनीतिक अधिरचना ही होती है, नया ज्ञानोदय, अगस्त 2017, पृ. 34
7. आह मेरे लोगो, ओ मेरे लोगो(गुजरात-2002), कात्यायनी, राख और अँधेरे की बारिश में पृ. 20
8. गुजरात 2002 एक बीहड़ देशकाल की बेहद सपाट कविता, कात्यायनी, राख और अँधेरे की बारिश में पृ.10
9. गुजरात 2002 एक बीहड़ देशकाल की बेहद सपाट कविता, कात्यायनी, राख और अँधेरे की बारिश में पृ.14
10. कवि ने कहाः कात्यायनी, पृ. 6
11. गाओ! गाने की पुनर्जाग्रत अदम्य ललक और दुर्निवार आवश्यकता के बोध के साथ गाओ, कात्यायनी, फुटपाथ पर कुर्सी पृ. 90
12. जादू नहीं कविता,कात्यायनी, जादू नहीं कविता, पृ. 159
13. कवि ने कहाः कात्यायनी, पृ. 9
14. कात्यायनी, सामाजिक बदलाव की मुख्य रणभूमि राजनीतिक अधिरचना ही होती है, नया ज्ञानोदय, अगस्त 2017, पृ. 34
15. मंगलेश डबराल, फुटपाथ पर कुर्सी, पृ. 196
16. औरत और घर, कात्यायनी, इस पोरुषपूर्ण समय में पृ.69
17. समकालीन हिंदी कविता में स्त्री स्वर, गोबिन्द प्रसाद, कविता का पार्श्व पृ.75
18. इस स्त्री से डरो, कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चंपा पृ.13
19. विष्णु खरे, इस पौरुषपूर्ण समय में पृ.137
20. वह रचती है जीवन और...,कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चंपा पृ.32
21. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, पृ.86
22. कात्यायनी, इस पौरुषपूर्ण समय में एक स्त्री का होना और रचना, कुछ ज्वलंत प्रश्न पृ. 240
23. हाकी खेलती लड़कियाँ, कात्यायनी, सात भाईयों के बीच चंपा पृ. 20
24. कात्यायनी, सामाजिक बदलाव की मुख्य रणभूमि राजनीतिक अधिरचना ही होती है, नया ज्ञानोदय, अगस्त 2017, पृ. 40
25. ऐसा किया जाये कि..., कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चंपा, पृ. 45
26. उनका भय, कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चंपा, पृ. 52
27. कात्यायनी, कुछ जीवंत, कुछ ज्वलंत पृ. 235